प्रतिरोध की संस्कृति और स्त्री आत्मकथाऐं

प्रतिरोध निषेध का कर्म है -अस्वीकार, अवरोध, विरोध या प्रत्याक्रमण का कर्म। यह मनुष्य के साथ जन्मी और मनुष्य की अवधारणा से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई प्रतीत होती है। मनुष्य की रचनात्मकता के समूचे इतिहास, उनके द्वारा गढी गयी संस्कृति या सभ्यता, इन सबको प्रतिरोध के इतिहास के रूप में देखा जा सकता है। किसी भी समाज में जब असमानता बढती है तो प्रतिरोध का जन्म होता है। प्रतिरोध के बिना परिवर्तन संभव नहीं होता। प्रतिरोध एक महत्वपूर्ण हथियार है, जो न्याय की लड़ाई लड़ने केलिए समर्थ है। प्रतिरोध का इतिहास तब से शुरू हुआ, जब से बराबरी की बात शुरू हुई। सदियों से चली आ रही दकियानूसी परंपराओं के विरुद्ध साहित्य की सभी विधाओं ने अपना प्रतिरोध व्यक्त किया है।

'प्रतिरोध की संस्कृति और स्त्री आत्मकथाएँ' नामक प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के माध्यम से स्त्रियों द्वारा लिखी गयी आत्मकथाओं में अभिव्यक्त प्रतिरोध की परंपरा की खोज करना ही मेरा मकसद है। जैसे कि हम सब जानते है, गद्य विधाओं के उद्‌भव के साथ-साथ आत्मकथा साहित्य का उदय भी हुआ था। आत्मकथा वह विधा है, जिसमें कोई व्यक्ति अपनी जीवनी स्वयं लिखता है। यह व्यक्ति की संपूर्ण जीवनयात्रा का प्रामाणिक दस्तावेज प्रस्तुत करनेवाला अन्तः साक्ष्य है। यह एक साथ सांस्कृतिक आलोचना और सामाजिक परिवर्तन केलिए दृष्टि प्रदान कर सकती है।

'Autobiography' शब्द का पहला प्रयोग विलियम टेइलर ने 1797 के अंग्रेज़ी पत्रिका 'The Monthly Review' में किया था। हिन्दी साहित्य में आत्मकथा नामक विधा

के इतिहास को देखने से पहले पाश्चात्य साहित्य की आत्मकथा साहित्य की विकास यात्रा की ओर देखना उचित होगा, क्योंकि अन्य विधाओं के समान आत्मकथा भी पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित है। इटालियन एवं स्पानिश भाषा में आत्मकथा लेखन सबसे पहले प्रारंभ हुई थी। अरबी एवं अंग्रेज़ी भाषा में भी अधिक आत्मकथात्मक रचनाओं का सृजन हुआ। भारतीय पृष्ठभूमि में देखें तो मुसलमान शासकों ने ही आत्मचरित्र लिखने की परंपरा शुरू की। बाबर द्वारा तुर्की भाषा में लिखी आत्मकथा 'बाबरनामा' (1529 AD) में साहित्य, राजनीति, इतिहास एवं मनोविज्ञान का चित्रण मिलता है। प्राचीन हिन्दी कवि आत्मप्रचार पर विश्वास न करनेवाले थे। अपनी बात स्पष्ट करने के लिए पहली बार तुलसीदास ने आत्मनिवेदन को अपनाया। गद्य लेखन की विविध विधाओं के पश्चात ही हिन्दी में आत्मकथा नामक विधा की शुरुआत हुई। भारतेन्दु युग में भी आत्मकथा लेखन की नींव डाला गया। सन् 1968 के कविवचन सुधा भाग 8 में भारतेन्दु हिरश्चन्द्र ने 'एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती' नाम से आत्मकथात्मक रचना की। 'प्रताप चरित्र' शीर्षक से प्रताप नारायणमिश्र ने अपने पूर्वजों का चरित्र-चित्रण प्रस्तुत की। भारतेन्दु युग से प्रेरणा पाकर द्विवेदी युग में भी आत्मकथा का सृजन हुआ। द्विवेदीयुग को आत्मकथा साहित्य का पल्लव काल कहा जा सकता है। डॉ. श्याम सुन्दर दास की 'मेरी आत्मकहानी' (1942) में अपने जीवन के दुर्घटनापूर्ण परिस्थितियों का वर्णन किया है साथ ही उन परिस्थितियों का सामना करने का रास्ता भी प्रस्तुत किया है। छायावाद युग आत्मकथा साहित्य विधा के चरम विकास का युग है। सन्तराम बी.ए. के 'मेरे जीवन के अनुभव', बाबू गुलाबराय की 'मेरी असफलताऐ' (1941), डॉ. श्याम सुन्दर दास की 'मेरी आत्मकहानी' (1941) आदि छायावादी युग की प्रसिद्ध आत्मकथाऐं है।

छायावादोत्तर युग में यशपाल के 'सिंहावलोकन' (3भाग) (1951-55), श्री. वियोगी हरि की 'मेरा जीवन प्रवाह' (1948), श्री. पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र की 'अपनी खबर' (1960), आदि का प्रकाशन हुआ। वर्तमान युग में धीरे- धीरे आत्मकथा साहित्य प्रगति के पथ पर अग्रसर दिखाई देता है।

सदियों से पुरुषवादी-सवर्ण वर्चस्ववादी संस्कृति की प्रताड़ना सहते आ रहे दलित और स्त्री आत्मकथा के ज़रिए अपनी कारुणिक, कडुवे और वास्तविक संबन्धों को प्रस्तुत कर रही है। स्त्री की आत्मकथा लेखन सिर्फ जीवन यात्रा का अंकन नहीं हैं, बल्कि अपनी जिजीविषा को दोहराना है। स्त्री की यातना सिर्फ उसकी निजी यातना नहीं रह जाती है, वह सर्वहारा की यातना में तबदील हो जाती है। ओम प्रकाश वाल्मीकी की 'जूठन' (1997), मोहनदास नैमिशराय की 'अपने-अपने पिंजरे' (1995), डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन की 'कन्धों पर बचपन' (समकालीन भारतीय साहित्य, जुलाई-अगस्त 2000), कौसल्या बैसंत्री की 'दोहरा अभिशाप' (2009), सुशीला टाकभौरे जी की 'शिकंजे का दर्द' (2011) आदि आधुनिक युग की प्रसिद्ध दलित आत्मकथाऐं है। स्त्रियों द्वारा लिखी आत्मकथाओं में मैत्रेयी पुष्पा की 'कस्तूरी कुण्डल बसै' (2002), 'गुड़िया भीतर गुड़िया' (2008), रमणिका गुप्ता की 'हादसे' (2005), प्रभाखेतान की 'अन्या से अनन्या' (2007), मन्नू भण्डारी की 'एक कहानी यह भी' (2008), कृष्णा अग्निहोत्री की 'लगता नहीं है दिल मेरा' (2010) आदि आ जाती है।

एक व्यक्ति की यानी 'आत्म' की कथा होने के कारण आत्मकथा नामक विधा से संबन्धित अध्ययन बहुत कम ही हुआ है। लेकिन वास्तविकता यह है कि 'आत्मकथा'

नामक विधा व्यक्ति की कहानी होने के कारण आज के परिवेश में अधिक प्रासंगिक लगती है । स्त्री आत्मकथा से संबन्धित अध्ययन भी हिन्दी साहित्य क्षेत्र में बहुत कम ही हुआ है। स्त्री आत्मकथा नामक विधा को शोध अध्ययन केलिए चुनने का मेरा कारण भी यही है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध 'प्रतिरोध की संस्कृति और स्त्री आत्मकथाऐं' चार अध्यायों में विभाजित है।

'आत्मकथा साहित्य : विकास एवं विशेषताऐं' शीर्षक प्रथम अध्याय में आत्मकथा साहित्य के विकास एवं विशेषताओं का विश्लेषण किया गया है। इस अध्याय में आत्मकथा से संबन्धित विभिन्न परिभाषाओं पर प्रकाश डाला गया है। तदुपरान्त आत्मकथा साहित्य का स्वरूप, आत्मकथा की विशेषताऐं, आत्मकथा के तत्व आदि का उल्लेख भी किया है। 'आत्मकथा साहित्य : विकास यात्रा' शीर्षक के अन्तर्गत विभिन्न भाषाओं में प्राप्त आत्मकथाओं का अध्ययन किया गया है। इटालियन एवं स्पानिश भाषा में प्राप्त आत्मकथाओं में हेन्री न्यूमान की 'अपोलोजिया प्रो विटा सुवा' (1864), पागान रेटोर लिबानियस की 'व्याख्यान' (AD 362 – AD 365), अगस्तिन की 'कन्फेशन्स' (AD 397 – AD 398) जीन जाक्कस रूसो की 'कन्फेशन्स' (1789), पीटर अबलार्ड की 'हिस्टोरिया कलामिटेटाम' (1132), लेनोर लोपाज़ दा कारड़ोबा की 'मेमरियास' (15वीं सदी), बनवन्टो सेल्लिनी की 'विटा' (1563) आदि का निरूपण किया गया है। अरबी भाषा में प्राप्त आत्मकथाओं में अल बलधुरी की 'किताब उन्साब अल अशरफ' (9 वीं सदी), उसामा इब्न मुन्किध की 'किताब अल इहतिबार' (1183), अल सुयुति की 'अल तहादुत बि-नि-मात अल्लाह' (15 वीं सदी) आदि की आत्मकथाऐं आती है। अंग्रेज़ी

आत्मकथाओं में मेरगरि काम्पे की पन्द्रहवीं सदी में लिखी 'बुक ओफ मेरगरि काम्पे', एड्वार्ड हेरबर्ड की 'लोर्ड हेरबर्ड ओफ चेरबरी' (1763), जोन बन्याय की 'ग्रेस अबोन्डिंग' (1666), जेइम्स बोसवेल की 'द लौफ आँफ जोनसन' (1791), विलियम हाज़लिट्ट की 'लिबर अमोरिस' (1823), नडेज़दा मान्डेल्टाम की 'होप एगेन्स्ट होप' (1970), न्यूमान की 'अपोलोजिया' (1864), जेफरीस की 'द प्रैइवेट पेपर्स ऑफ हेन्री रैक्रीप्ट' (1903), डब्ल्यू. एच. डेवीस की 'द ओटोबयोग्रफी ओफ सुपर ट्राम्प' (1908), लेडी असक्कित की 'ओटोबयोग्रफी' (1920) आदि आ जाती है। भारतीय भाषाओं में प्राप्त आत्मकथा के अन्तर्गत संस्कृत , पाली, मराठी, उर्दू, गुजराती, तमिल और मलयालम की आत्मकथाऐं आ जाती है । हिन्दी आत्मकथा साहित्य विकास यात्रा के अन्तर्गत बनारसी दास जैन की 'अर्द्धकथानक' (1641), भारतेन्दु युग से लेकर आज तक की आत्मकथाओं का उल्लेख किया गया है।

'आत्मकथा साहित्य : विकास एवं विशेषताओं' के अध्ययन से इस निष्कर्ष तक पहूँचा है कि आधुनिक काल तक आते आते आत्मकथा के प्रति उदासीनता की भावना दूर हो गई। देश के नेता, साहित्यकार, विचारक, क्रांतिकारी, कवयित्री, सिनेतारिकाऐं तथा जीवन के विभिन्न क्षेत्र से महिलाऐं भी अपने जीवन को वाणी देने केलिए उत्प्रेरित हुई। हिन्दी आत्मकथा साहित्य आरंभ में उच्च कोटि का न होने पर भी स्वातंत्रोत्तर युग में आकर उसका विकास हुआ, इसीकारण रचनात्मक साहित्य के क्षेत्र में आज आत्मकथा साहित्य को भी स्थान प्राप्त है।

'प्रतिरोध की संस्कृति और आत्मकथाओं की भूमिका' शीर्षक दूसरे अध्याय में प्रतिरोध शब्द की व्यापकता के बारे में अध्ययन किया गया है। मनुष्य अपनी परिभाषा में ही प्रतिरोधात्मक जीव है। किसी विशिष्ट समय में, विशिष्ट व्यक्ति या विशिष्ट समुदाय द्वारा अपने ऊपर आरोपित व्यवहारों, विचारों एवं नीतियों को चुनौती देना ही प्रतिरोध है। शासक वर्ग के अधिकार स्थापन के विरुद्ध पीडित और शोषित, समाज में स्थान प्राप्त करने के उद्देश्य से शासक वर्गों की विचारधारा के मुकाबले एक समानांतर विचारधारा का निर्माण करता है तो उसे प्रतिरोधी चेतना नाम देना उचित है। प्रतिरोध क्या है? प्रतिरोध की परंपरा, प्रतिरोध का सैद्धान्तिक पक्ष आदि का विश्लेषण इस अध्याय में हुआ है। साथ ही कला और संस्कृति के क्षेत्र में प्रतिरोध, साहित्य के क्षेत्र में प्रतिरोध, दलित साहित्य और प्रतिरोध, नारी साहित्य और प्रतिरोध, आत्मकथा के ज़रिए स्त्री का प्रतिरोध आदि का भी अध्ययन हुआ है।

'स्त्री आत्मकथाओं में अभिव्यक्त प्रतिरोध की संस्कृति' इस शोध प्रबन्ध का तीसरा अध्याय है। स्त्री आत्मकथाओं की आक्रोश और उनके प्रतिरोध को रचनात्मक अभिव्यक्ति के रूप में इस अध्याय में देखा गया है। आत्मकथाओं द्वारा महिलाऐं अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनने के साथ-साथ सामाजिक कुरीतियों का भी विरोध करती है। स्त्री आत्मकथा उत्कट जिजीविषा और आत्मबल के सर्जनात्मक रूपान्तरण की ओर संकेत करती है। अध्ययन की सुविधा केलिए इस अध्याय को दो खण्डों में विभाजित किया गया है। पहले खण्ड का शीर्षक है 'बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध की हिन्दी स्त्री आत्मकथाओं का विश्लेषण'। इसके अन्तर्गत 'स्त्री-दर्पण' पत्रिका के जुलाई, 1915 से मार्च, 1916 तक के अंकों में धारावाहिक के रूप में दुःखिनीवाला द्वारा प्रकाशित 'सरला :

एक विधवा की आत्मजीवनी' और 1927 में चाँद कार्यालय, इलाहाबाद से प्रकाशित स्फुरना देवी की आत्मकथा 'अबलाओं का इन्साफ' आ जाती है।

बालविवाह, विधवा जीवन, शिक्षा से स्त्री को वंचित रखना, अज्ञता, रीति-रिवाज़, व्यभिचार, धर्म के नाम पर स्त्री शोषण, लड़की को निकृष्ट जीवि के रूप में देखने की रीति, बहु पत्नीत्व आदि समस्याओं से दोनों आत्मकथाऐं गुज़रती है। स्त्री शिक्षा के महत्व की एवं अस्मिता की तलाश दोनों आत्मकथाओं को प्रतिरोधात्मक तेवर दे देती है। 'सरला : एक विधवा की आत्मजीवनी' के ज़रिए बाल विधवाओं की कठिनाइयों एवं मज़बूरियों को चित्रित करने के साथ साथ उनके इस हालत का कारण ढूँढ़ने का प्रयास भी दु:खिनीबाला द्वारा हुआ है। स्त्रियों के समुख एक नए दुनिया की आशा प्रस्तुत कर रही है इस आत्मकथा के ज़रिए दु:खिनीबाला। स्फुरना देवी स्त्री –पुरुष संबन्धों में समानता लाना चाहती हैं । 'अबलाओं का इन्साफ' के ज़रिए स्फुरनादेवी अपने वर्चस्व की स्थापना करने केलिए स्त्री को दासी बनानेवाली पुरुष दंभ के विरुद्ध आवाज़ उठाती है ।

'बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध की हिन्दी स्त्री आत्मकथाओं का विश्लेषण' नामक दूसरे खण्ड मे स्त्रियों द्वारा लिखी गई आत्मकथाऐं - मैत्रेयी पुष्पा की 'कस्तूरी कुण्डल बसै' (2002), रमणिका गुप्ता की 'हादसे' (2005), प्रभाखेतान की 'अन्या से अनन्या' (2007), मैत्रेयी पुष्पा की 'गुड़िया भीतर गुड़िया' (2008), मन्तू भण्डारी की 'एक कहानी यह भी' (2008), चन्द्रकिरण सोनरेक्सा की 'पिंजरे की मैना' (2008), कृष्ण अग्निहोत्री की 'लगता नहीं है दिल मेरा' (2010), 'और....और.... औरत' (2010) आदि आत्मकथाओं का विश्लेषण हुआ है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में स्त्री आत्मकथा में

सघन व्यक्तिगत अनुभूतियाँ होने लगी। आत्मकथा के ज़रिए आज की नारी अपनी दमित-शोषित 'आत्म' को प्रकाशित कर रही है। लेखिकाओं ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों को समकालीन आत्मकथा में समेटकर समष्टि के घरातल पर उकेरने का सार्थक प्रयास किया है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध की महिला आत्मकथाकारों ने परिवार में नारी की भूमिका, नारी अस्मिता, स्त्री पुरुष संबंन्ध, नारी शोषण, नारी की बदलती मानसिकता आदि को केन्द्र बनाकर आत्मकथा लिखी है। इन आत्मकथाकारों ने पुरुष निर्मित पितृसत्तात्मक नैतिक प्रतिमानों की जडें तोड़कर पाठक के सामने रख देती है, साथ ही पाठक को सोचने केलिए प्रेरित करती है। भारत में स्वतंत्रत सामाजिक व्यवस्था के नाम पर प्रयुक्त भ्रष्टाचारों का व्यापक विरोध होने लगा, जिसकी वजह से अनेक सामाजिक कुरीतियाँ जैसे सती प्रथा, बाल विवाह, विधवा विवाह निषेध आदि का अन्त होने लगा। यद्यपि समाज में स्त्रियों के समक्ष उपस्थित इन समस्याओं का उन्मूलन हुआ, तो भी नारी के समक्ष परिवेशगत नई समस्याऐं उभरने लगी। आत्मकथा के ज़रिए स्त्री इन समस्याओं का खुलकर विरोध कर रही है।

आत्मकथा के माध्यम से स्त्री आत्मकथाकार पुरुष वर्चस्ववादी समाज में स्त्री को दूसरा स्थान देने की प्रवृत्ति, पुरुष के उच्चता ग्रन्थी के शिकार होने वाली नारी, रूढ़ियों के नाम पर बन्धन, बुराइयों का सामना करनेवाले स्त्री को झकझोरने की नीति, परिवार एवं कर्म क्षेत्र में होनेवाले शोषण, लड़कियों को शिक्षा से वंचित रखने की प्रवृत्ति, उपभोगवादी दृष्टि से स्त्री को देखने की स्थिति आदि अनेक स्त्री समस्याओं को खुलकर प्रस्तुत करके उसके विरुद्ध प्रतिरोध करती है। सामाजिक और पारिवारिक जकड़नों से स्वतंत्र होने की कामना और अपनी अस्मिता की खोज करने का प्रयत्न आधुनिक स्त्री आत्मकथाकारों में

पाई गई है। भूमण्डलीकरण, निजीकरण, बाज़ारीकरण के शिकर स्त्री अपनी आत्मकथाओं के माध्यम से प्रतिरोध करती है।

कौसल्या बैसन्द्री की 'दोहरा अभिशाप' (2009) और सुशीला टाकभौरे की 'शिकंजे का दर्द' (2011) नामक दो आत्मकथाऐं अपने दलित परिवेश के कारण अधिक महत्वपूर्ण बन गई है। स्त्री होने की वजह से, जाति में दलित होने की वजह से, गरीब होने की वजह से दलित महिला तिहरा शोषण का शिकार है। दलित स्त्री आत्मकथाकार मानवाधिकारों केलिए संघर्ष करके मुक्ति की चाह प्रस्तुत करती है। दलित स्त्री आत्मकथाकार हिन्दू धर्म की जर्जर प्रथाओं, पूँजीवाद के शोषणकारी चरित्र एवं ब्राह्मणवादी जगड़न का प्रतिरोध करती है। दरअसल दलित स्त्रियाँ आत्मकथा के ज़रिए वर्चस्ववादी चेहरों पर ओढ़े सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, सभ्यता और गौरव के मुखौटा उतारकर उन्हें नंगा कर दिया है।

चतुर्थ अध्याय 'भाषा एवं शैली परक विशेषताओं का विश्लेषण' है। महिला आत्मकथाकारों ने संस्कृत निष्ठ परंपरागत साहित्यिक भाषा, प्रस्तुतीकरण को नकारकर सर्वग्राही भाषा का प्रयोग किया है। ऐसी भाषा जो महिलाओं की पीड़ा, व्यथा, अपमान की सही और यथार्थवादी अभिव्यक्ति बन सके। वर्जनाओं को तोड़कर लिखने के कारण स्त्री की आत्मकथात्मक भाषा पुरुष से अधिक तीखी है। स्त्री आत्मकथाकार की भाषा में समस्या है और समस्या से मुक्ति पाने का रास्ता भी है। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध की स्त्री आत्मकथाओं की भाषा एवं शैली में 'अबलाओं का इन्साफ' और 'सरला : एक विधवा की आत्मजीवनी' की भाषा एवं शैलीपरक अध्ययन किया गया है । बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध की स्त्री आत्मकथाओं में 'कस्तूरी कुण्डल बसै', 'हादसे', 'अन्या से अनन्या'

आदि स्त्री आत्मकथाओं का भाषा एवं शैलीपरक अध्ययन है। बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध की दलित स्त्री आत्मकथाओं की भाषा एवं शैलीपरक अध्ययन में 'दोहरा अभिशाप' और 'शिकंजे का दर्द' की भाषा एवं शैली परक विश्लेषण किया गया है। हिन्दी स्त्री आत्मकथाकार मुहावरों, कहावतों एवं सूक्तियों का प्रयोग उचित स्थान पर करके आत्मकथा को आकर्षक रूप प्रदान किया है। फन्तासी शैली, पूर्व-दीप्ति, दृश्यात्मक शैली, प्रतीकात्मक शैली, निबन्ध शैली, कथात्मक शैली, औपन्यासिक शैली आदि शैलियों का प्रयोग करके आत्मकथाकार आत्मकथा को अधिक प्रभावशाली बना दिया है।

अंत में उपसंहार दिया गया है। इतिहास में जिनके अस्तित्व के संबन्ध में कोई निशान मौजूद नहीं, वे अपने अस्तित्व को दर्ज करके अपने इतिहास का सूत्रपात करते है। शायद इसी राजनीति की वजह से विधा के तौर पर आत्मकथा आजकल इतनी चर्चा का विषय है। पुरुषवर्चस्वी समाज ने हमेशा स्त्री को बौना रखना चाहा। अमानवतावादी, पुरुष प्रधान व्यवस्थावाले समाज से आत्मकथा के ज़रिए स्त्री प्रतिरोध करती है। आज की शिक्षित नारी अज्ञान के अंधकार से उभरकर समाज में अपना हक स्थापित करने केलिए उतारू हो गयी है। पूँजीवादी संस्कृति हो या सामंतवादी संस्कृति, पुरुष की दृष्टि में स्त्री केवल उपभोग की वस्तु मात्र रह गयी है, इसके विरुद्ध अपने लेखन की शक्ति के ज़रिए स्त्री आत्मकथाकार प्रतिरोध करती है। विरोधी माहौल को अनुकूल बनाने की जी तोड़ कोशिश करती रहती है स्त्री आत्मकथाकार।

स्त्री आत्मकथाऐं सांस्कृतिक आलोचना और सामाजिक परिवर्तन केलिए दृष्टि प्रदान करती है। ये आत्मकथाऐं एक व्यक्ति के अस्तित्व के साथ साथ सामूहिक अस्तित्व से भी जुड़ते चलते है। निजी अनुभवों के टुकड़ों-टुकड़ों में अभिव्यक्त इन आत्मकथाओं में

'मैं' से ऊपर उठकर मनुष्यता की तलाश है। इस उपसंहार में इस अध्ययन की खूबियों और खामियों पर भी विचार किया गया है।